प्रवचन नं. १३० गाथा-५० से ५५ दिनाङ्क ०७-११-१९७८, मंगलवार
कार्तिक शुक्ल ७, वीर निर्वाण संवत् २५०४

श्री समयसार, ५० से ५५ गाथा, १९ बोल चले हैं।

बीसवाँ, '**कायवर्गणा**' यह काया है न, वह परमाणु का समूह, **वचन** वर्गणा **और मनोवर्गणा का कम्पन जिनका लक्षण है, ऐसे जो योगस्थान...** जो कम्पन के स्थान, **वे सर्व ही जीव के नहीं हैं...** आहाहा! प्रदेश कम्पते हैं न, आहाहा! मन, वचन वर्गणा के निमित्त से और कम्पन स्वयं का, परन्तु वह कम्पन पुद्गल का है – ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह पुद्गल का, इस आत्मा का स्वभाव नहीं है। आहाहा! वह कम्पन, **योगस्थान वे सर्व ही जीव के नहीं हैं क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से...** आहाहा! उसकी **(अपनी) अनुभूति से भिन्न है।** अर्थात्? कि चैतन्य, जो स्वरूप प्रथम वस्तु, जो ज्ञायक -स्वभाव चैतन्य... यह क ख ग घ में आता है न? पहला 'क', इसका अर्थ आत्मा किया है। 'क' अर्थात् आत्मा। अष्ट, १००८ लक्षण। जैसे इसमें 'क' पहला है, वैसे यहाँ 'क' वह यह आत्मा ऐसा, आहाहा! भगवान आत्मा 'क' अर्थात् ही आत्मा ऐसा। यहाँ तो काय है न! अर्थात् शरीर है परन्तु वहाँ तो 'क' अर्थात् आत्मा, उसका आय अर्थात् जीवास्तिकाय। आहाहा! यह अनुभूति उसकी, जीवास्तिकाय-जीव=अस्तिकाय, असंख्य प्रदेश समूह, आहाहा! उसकी अनुभूति-उसके स्वभाव-सन्मुख होकर जो अनुभव आनन्द की दशा आदि, ज्ञान की पर्याय आदि अनुभव होता है, उस अनुभूति से भिन्न है। द्रव्य से.. पहले जीव में नहीं – ऐसा कहा। है न? वह जीव को नहीं, ऐसा कहा। फिर कहा कि वह जीव को नहीं कब? कि इसे अनुभूति हो, तब वह जीव को नहीं। आहा.हा! समझ में आया?

यह अष्ट १००८ लक्षण हैं न? भगवान को कपाली कहा है, कपाली। वे कपाली नहीं आते? कपाली! हे प्रभु! आप कपाली हो। 'क' अर्थात् आत्मा; पाली अर्थात् पालनेवाला। आत्मा के पालनेवाले हैं; इसलिए आप कपाली हैं। आहाहा! यहाँ कहते हैं आत्मा को पालनेवाला अर्थात् प्रभु स्वयं निमित्त से कहा है परन्तु यहाँ आत्मा जो शुद्ध चैतन्यमूर्ति प्रभु, नवतत्त्व में भी उसका नाम पहले आता है न? 'जीव'। छह द्रव्य में

उसका नाम अन्तिम आता है। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल, पुद्गल, और जीव; क्योंकि सबको जाननेवाला (है), इसलिए अन्तिम रखा। नवतत्त्व में पहला। जैसे कक्का में पहला 'क', वैसे यह पहला भगवान आत्मा। आहाहा! यह शुद्धचैतन्य पहले नम्बर में। आहाहा! जीव को अर्थात् द्रव्य को ये योग के कम्पन पुद्गल के परिणाममय होने से,... कम्पन तो पर्याय का है, पर्याय अपने में, परन्तु वह कम्पन इसका वास्तविक स्वभाव नहीं है; इसलिए उसे पुद्गल का परिणाम कहकर, जीव को नहीं है (- ऐसा कहा है)। कब? कि जीव की अनुभूति करे तब। आहाहा! ऐसी बात है। आहाहा!

यह तो नन्दीश्वरद्वीप का पहला दिन है न यह? अष्टाह्निका का पहला दिन है। इन्द्र, भगवान के पास वहाँ जाते हैं। आहाहा! भले भक्ति का शुभभाव है परन्तु इन्द्र एकावतारी, परन्तु बावन जिनालय... सब अस्ति है, हों! है, आहाहा! इन्द्र भी भक्ति करने ढाई द्वीप के बाहर आठवाँ द्वीप है, वहाँ जाते हैं, भाव आता है। तथापि वह भाव... यहाँ आगे कहेंगे कि विशुद्धिस्थान जीव के नहीं है। आहाहा! वे शुभभाव के प्रकार हैं, यह आयेगा, हों! २६ वाँ, वह जीव में नहीं है। आहाहा!

एक ओर ऐसा कहना, सर्वविशुद्ध अधिकार में पीछे, कि पुण्य और पाप भी जीव है। आता है न? धर्म-अधर्म जीव है। यह धर्म-अधर्म अर्थात् पुण्य-पाप। आहाहा! धर्मास्ति-अधर्मास्तिकाय से ये भिन्न हैं परन्तु धर्म-अधर्मसहित है, यह धर्म-अधर्म अर्थात् पुण्य और पाप। जीव, पुण्य और पापमय है, वहाँ ऐसा कहना और यहाँ ऐसा कहना कि ये परिणाम पुद्गल के हैं, इसके स्वभाव में ये नहीं हैं, इस अपेक्षा से पुद्गल के गिनकर जीव स्वभाव की अनुभूति होने पर वे पुद्गल परिणाम अनुभव में नहीं आते, भिन्न रह जाते हैं। आहाहा! और यहाँ कम्पन कहा इतना भी अनुभूति होने पर सम्यग्दर्शन होने पर आंशिक कम्पन का भी क्षय होता है। आहाहा! क्योंकि इसके जो अनन्त गुण हैं, उनमें गुण का आधार जो द्रव्य है, ऐसे द्रव्य की अनुभूति हुई, उसे चैतन्य-चमत्कार की परिणति हुई, उस परिणति में अनन्त पुद्गलादि के परिणाम नहीं है। उसमें कम्पन नहीं है, तथापि कम्पन का जो अंश है, उस अनुभूति के काल में उसका नाश होता है, अंश। आहाहा!

अपने तो यहाँ अप्रतिहत अनुभूति लेना है। आहाहा! समझ में आया? अर्थात्

क्या ? कि अनुभूति हुई, वह हुई; अब वह जाये – ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा, उसके यह कम्पन नहीं है, क्योंकि पुद्गल के परिणाम गिनकर... परन्तु कब नहीं ? कि उस जीव की अनुभूति करे, तब उसमें नहीं, ऐसा भेद पड़ता है, इसके बिना भेद नहीं पड़ता। हैं तो भिन्न, परन्तु भिन्न होने पर भी भिन्नपने का अनुभव हो, तब वे भिन्न हैं। आहाहा! ऐसा स्वरूप अब! वे पुद्गल के परिणाम हैं। आहाहा! है ? **पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है।** आहाहा! स्वयं भगवान आत्मा की अनुभूति–ऐसा कहा न ? अपनी अनुभूति अर्थात् स्वयं का होने से, अनुभूति–स्व की अनुभूति, चैतन्यस्वभाव की अनुभूति वर्तमान में अर्थात् द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों ही आ गये। द्रव्य आत्मा और गुण आनन्दादि तथा उसकी अनुभूति, वह पर्याय। जो कम्पन है, वह भी वास्तव में पुद्गल की पर्याय गिनी है। आहाहा! पुद्गलद्रव्य, उसके वर्णादि गुण, आहाहा! और कम्पन, वह पर्याय – ये तीन द्रव्य, गुण और पर्याय, इस भगवान द्रव्य–गुण–पर्याय में नहीं हैं। आहाहा! अभी तो द्रव्य, गुण और पर्याय नाम आते न हों! एक बार इन्दौर का एक व्यक्ति कहीं से आया था कि द्रव्य, गुण और पर्याय क्या ? शिक्षण शिविर में (आया था)। आहाहा! यह २० बोल हुए।

२१, **भिन्न-भिन्न प्रकृतियों के परिणाम...** आहाहा! **जिनका लक्षण है, ऐसे जो बन्धस्थान वे सर्व ही जीव के नहीं हैं,...** बन्ध के भिन्न–भिन्न प्रकार हैं न ? वे सब परिणाम पुद्गल के हैं। वह **पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है।** आहाहा! वे जीव में नहीं हैं। प्रकृति के जो प्रकार, उसके परिणाम जड़ में हैं – परन्तु कब ? कि यह परिणाम अनुभूति करे, तब इसे भिन्न है, ऐसा जानने में आवे। आहाहा! **पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है।** २१ हुए।

(२२) **अपने फल के उत्पन्न करने में समर्थ कर्म-अवस्था...** जड़ अवस्था, **जिनका लक्षण है...** कर्म अवस्था जिसका लक्षण है, **ऐसे जो उदयस्थान...** आहाहा! ये कर्म के उदयस्थान और पर्याय में भी जितने प्रकार विकारादि के उदय प्रकार होते हैं **वे सर्व ही जीव के नहीं हैं,...** आहाहा! यह क्या कहा ? कि कर्म की प्रकृतियों के जितने प्रकार हैं, वे तो जड़ के हैं। अब इस ओर यह तो उपादान उसका हुआ, अब उसमें निमित्त है इस

ओर में-आत्मा में, इतने प्रकृति के जितने परिणाम हैं-उदय स्थान (है), उतना उसका भाव यहाँ पर्याय में है, पर्याय में, भी इतने ही प्रकार के भाव जीव के। वह तो-वह चीज़ तो जड़ की हो गयी, अब यहाँ भी इतने प्रकार जीव की पर्याय में है, उसे भी जड़ कहकर... आहाहा! समझ में आया? यह क्या कहा? कि जितने प्रकृति के प्रकार हैं, वे तो स्वतन्त्र है। अब उसमें यहाँ जीव निमित्त है या नहीं कोई पर्याय उसकी? वह अपने इतने प्रकृति के जो भेद हैं, उतनी ही पर्याय यहाँ परिणाम में हो, इतने प्रकार स्वयं के कारण विकृत अवस्था के भेद हैं, परन्तु दोनों को शामिल गिन डाला। उदयस्थान और यह भाव सब एक गिनकर... आहाहा! ये सब पुद्गल के परिणाम हैं। आहाहा! ये जीव को नहीं है।

यह प्रश्न एक बार उठा था। भाई ने-वीरजीभाई ने किया था। राणपुर, ८४ के चातुर्मास में (यह प्रश्न किया था) कि यह जितने प्रकृति के परमाणु हैं, वह तो स्वतन्त्र जड़ की पर्याय है, अब आत्मा में उसका निमित्तपना होता है, वैसे प्रकार हैं या नहीं? आत्मा में है न? वहाँ प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश जितने प्रकार के हैं, वे तो उसके (जड़कर्म के) हैं। अब उसमें यहाँ निमित्तपना है, उतने प्रकार का यहाँ प्रकृति, स्थिति, अनुभाव और प्रदेश की विकृत अवस्था है न? क्या कहा, समझ में आया?

मुमुक्षु : अधिक स्पष्ट करें!

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, करते हैं न! वहाँ तो दोनों को एक गिनेंगे अब। परन्तु यहाँ तो अभी जितनी कर्मप्रकृति है, वह प्रकृति-स्वभाव, उसके प्रदेश, उसकी स्थिति और रस, यह चार प्रकार उसमें है, वह तो उसमें है। अब यहाँ आत्मा में वह नहीं, अभी नहीं, अन्यत्र कहेंगे। वह तो यह वस्तु आत्मा में नहीं, आत्मा में उसका निमित्तपना हो, ऐसी कोई वस्तु है या नहीं?

मुमुक्षु : पर्याय में....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में। प्रकृति है, वह तो जड़ की, जड़ में। स्वभाव, स्थिति, रस और प्रदेश की संख्या, वह तो जड़ की जड़ में है। परन्तु अब वह तो वहाँ उसके उपादान में हुआ, किन्तु इसके (जीव के) उपादान में क्या है? कि जिसे वह निमित्त हो, इस उपादान में क्या है? आहाहा! थोड़ी सूक्ष्म बात है भाई! यह तो वीरजीभाई ने प्रश्न किया

था कि यहाँ तो कर्म है, वह तो कर्म की अवस्था द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उसमें है परन्तु यहाँ आत्मा में उसे ऐसी जो है योग्यता के प्रमाण में यहाँ पर्याय है या नहीं? भाई! आहाहा! जितने प्रकृति के स्थान हैं, उदय के / अनुभाग के प्रकार हैं, स्थिति के प्रकार हैं, प्रदेश की संख्या के (प्रकार हैं), उतने ही प्रमाण में यहाँ पर्याय में भी ऐसी योग्यता स्वयं की स्वयं के कारण है। समझ में आया? अब ऐसी बातें हैं। क्योंकि वह तो पर में जड़ का हुआ; अब आत्मा में कोई उसका उपादान इसमें है और उसे निमित्त हो, ऐसा इसमें कुछ है या नहीं? आहाहा!

क्योंकि जड़ के परमाणु की पर्याय है, वह तो स्वतन्त्र उसकी पर्याय है। अब उसमें है, उसमें उसका निमित्तपना और अपने में उपादानपना क्या है? उसमें निमित्तपना उसे हो और अपना उपादानपना हो, वह क्या है? है?

मुमुक्षु : जीव की विकारी पर्याय....

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव की इतनी योग्यता जितने प्रमाण में प्रकृति, स्थिति, प्रदेश और संख्या, इतने ही प्रमाण में उसकी योग्यता अपनी पर्याय में है विकृत। आहाहा! सूक्ष्म बात भाई! आहाहा!

यहाँ तो दोनों के उदयस्थान दोनों को पुद्गल परिणाम में डाल दिया। आहाहा! समझ में आया? यह निमित्त-निमित्त सम्बन्ध से हुआ भाव, उसे पुद्गल के परिणाम में डाल दिया। था तो इसका, इसकी पर्याय। वह तो उपादान जड़ का स्वतन्त्र है और यहाँ विकृत अवस्था भी उपादान की पर्याय में स्वतन्त्र है, तब उसके प्रमाण में निमित्त होता है, तथापि यहाँ तो अब....

मुमुक्षु : नैमित्तिक भाव भी पुद्गल...

पूज्य गुरुदेवश्री : हें! नहीं, वह सब। नैमित्तिक हो वह भी पुद्गल और उसे निमित्त हो, वह भी पुद्गल, यह अपेक्षा लेनी है। सूक्ष्म बात भाई! वीतराग मार्ग का कोई भी बोल सूक्ष्म, बहुत कठिन है। आहाहा! यह तो तीन लोक के नाथ... आहाहा!

आज तो यह विचार आया था कि नवतत्त्व में जीवतत्त्व पहला और धर्मास्ति (आदि) छह द्रव्यों के नाम में जीव अन्तिम और कर्म में 'क' पहला और सबमें भगवान आत्मा पहला।

आहाहा! प्रत्येक को जानने के काल में आत्मा ऊर्ध्व न हो तो जाने किसे? आहाहा!

यह यहाँ जाननेवाला भगवान आत्मा, उसकी पर्याय में प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशयोग्य जो पुद्गल के परिणाम हैं, उसे यहाँ निमित्त हो, ऐसी योग्यता स्वयं की पर्याय में उतने प्रकार की योग्यता स्वतन्त्र स्वयंसिद्ध है। आहाहा! वह उसके कारण नहीं। आहाहा! द्रव्य-गुण के कारण नहीं। आहाहा! अरे! ऐसी कठिन बात है।

पर्याय में इतनी योग्यता जितने प्रदेश हैं, वहाँ उतने में निमित्त हो, ऐसी विकृत अवस्था अपनी है। जितना वहाँ अनुभागरस है, स्थिति है, प्रकृति / स्वभाव है, उतने ही प्रमाण में यहाँ विकार की अवस्था योग्यता यहाँ आत्मा में आत्मा के कारण है। वह (कर्म आदि) चीज़ तो अत्यन्त भिन्न है, वह भिन्न है। ऐसा सिद्ध करने के बाद... आहाहा! यह मार्ग भाई! आहाहा! यहाँ तो जीव को नहीं। जो प्रकार सामने में जितने हैं, उतने प्रमाण में निमित्त होने की योग्यता थी, वह जीव को नहीं, ऐसा यहाँ तो सिद्ध करना है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं। आहाहा! **बन्धस्थान वे सर्व ही जीव के नहीं हैं, क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है।**

अब, **अपने फल के उत्पन्न करने में समर्थ... ऐसे जो उदयस्थान...** यहाँ उदयस्थान। है तो पर्याय में इतनी योग्यता का प्रकार जितना उदय हो वहाँ, इतना ही यहाँ प्रकार अपनी पर्याय में है, परन्तु इन दोनों का निमित्त-निमित्तपना व्यवहार से है। परमार्थ से आत्मा में नहीं - ऐसा कहकर ये बन्ध के उदयस्थान जीव की पर्याय में होने पर भी और उदयस्थान जड़ के जड़ में होने पर भी, दोनों के सम्बन्ध को गिनकर ये पुद्गल के परिणाम इन्हें गिनकर जीव के स्वभाव में ये नहीं हैं। आहाहा!

ये जीव के स्वभाव में नहीं हैं। (यह) इसे कब ख्याल में आवे? कि भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु की अनुभूति होने पर वे जीव में नहीं, अनुभूति से भी भिन्न है। जीव में नहीं परन्तु अनुभूति से भी भिन्न है। आहाहा! ऐसा वीतराग का मार्ग कहीं नहीं है। सब बातें करते हैं रजनीश और वे सब गप्पागप्प करते हैं। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु आत्मा, पर्याय को आलिंगन नहीं करता। आहाहा! उसके बदले पर का आलिंगन और चुम्बन... अरे प्रभु! गजब किया नाथ! अरे! ऐसी बातें हिन्दुस्तान में-आर्यदेश में!! हैं? आहाहा!

यहाँ तो भगवान आत्मा, आहाहा! विकृत अवस्था को तो स्पर्शता-छूता नहीं, परन्तु अविकृत पर्याय को भी द्रव्य आलिंगन नहीं करता। आहाहा! आहाहा! और वह निर्मल अवस्था भगवान आत्मा को आलिंगन नहीं करती, दोनों चीज़ भिन्न है। आहाहा! अब यह इसे धर्म ऐसा (रजनीश) जैन में प्रोफेसर था। गजब कर डाला। आहाहा! जिसका मोरारजी को भी विरोध करना पड़ा। आहाहा! यह आत्मा प्रभु पर को चुम्बन और आलिंगन... वह तो पर को छूता ही नहीं न, तीन काल में! आहाहा! तीसरी गाथा में नहीं आया यह? पर को परद्रव्य के गुण-पर्याय को... आत्मा अपने द्रव्य-गुण-पर्याय को चुम्बन करे परन्तु पर को तो चुम्बन नहीं करता, स्पर्श नहीं करता, आलिंगन नहीं करता। आहाहा! तीसरी गाथा में आया न! अपने द्रव्य-गुण-पर्याय को स्वयं चुम्बन करता है अर्थात् वहाँ उसमें होता है ऐसा। परन्तु पर को तो स्पर्श भी नहीं करता, पर को स्पर्श कहाँ से करे? पर का तो इसमें अभाव है। आहाहा! यहाँ तो जो कोई पर को पर्याय में चुम्बन करता है, उसकी जो विकृत अवस्था है, आहाहा! उसका द्रव्यस्वभाव तो उसे नहीं चुम्बता परन्तु उस द्रव्यस्वभाव की अनुभूति से वह विकृत अवस्था भिन्न है। आहाहा! इसकी पर्याय की विकृत अवस्था, आहाहा! जीव में नहीं, वे सब पुद्गल के परिणाम गिनने में आये हैं। आहाहा! निमित्त-निमित्त का पूरा सम्बन्ध व्यवहार, सब पर में डाल दिया। आहाहा! समझ में आये उतना समझना, बापू! यह तो पार नहीं होता। भगवान के मार्ग का पार नहीं होता। आहाहा! थोड़ा बहुत जानकर ऐसा हो जाये कि हमने बहुत जाना। बापू! पार नहीं होता, प्रभु! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, वे **उदयस्थान, वे सर्व ही जीव के नहीं हैं,...** आहाहा! एक ओर कहे कि उदयस्थान पर्याय में, अपनी पर्याय में है। विकृत के उदय के जितने प्रकार हैं, वे सब, वह तो इसकी पर्याय को पर से भिन्न सिद्ध करने के लिए (कहा है) परन्तु यहाँ तो अब पर्याय-विकृत अवस्था से भिन्न स्वभाव को सिद्ध करना है। आहाहा! **उदयस्थान, वे सर्व ही जीव के नहीं हैं, क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है।** इस स्वभाव का अनुभव हुआ, उसमें वे नहीं आते; इसलिए भिन्न है, ऐसा। आहाहा!

भगवान ज्ञानस्वरूप प्रभु, ज्ञायकस्वरूप का-ज्ञान का-आनन्द का अनुभव होने

पर, उसमें ये विकृत स्थान-उदयस्थान नहीं आते; इसलिए वे पुद्गलमय के परिणाम गिनकर उन्हें अनुभूति से भिन्न गिनने में आया है। आहाहा! २२ हुए।

२३, **गति,...** ये चार गति आत्मा में नहीं है। ये मार्गणास्थान। यह शरीर नहीं, हों! शरीर, वह कोई गति नहीं। यह शरीर मनुष्यगति नहीं। अन्दर पर्याय में जो योग्यता गति की-मनुष्यगति की है, वह गति है। आहाहा! वह गति... वहाँ गमन उस प्रकार का परिणमन है न? चार गति का मनुष्य का देव आदि का, वह गति चार भी जीव में नहीं है। गति की पर्याय उसमें है, गति उसकी पर्याय में-उसमें है। वह गति कर्म के कारण, शरीर के कारण यह शरीर मनुष्यगति, यह शरीर मनुष्यगति नहीं, यह तो जड़ की पर्याय है। मनुष्यगति तो उसे कहते हैं जो मनुष्य के योग्य दशा अन्दर हुई, उसे मनुष्यगति कहते हैं। अब वह है तो इसकी पर्याय में, परन्तु यहाँ तो जीव स्वभाव के वर्णन में तो... आहाहा! ये चारों ही गतियाँ पुद्गल के परिणाम है - ऐसा कहा है। आहाहा! वे जीव में नहीं है। यह गति, जीव में नहीं है। आहाहा!

उसमें आता है न, पंचास्तिकाय में? कर्म पराभव करके भाव होता है, आता है न? आता है कहीं? जहाँ भाव का वर्णन किया है न, ५६-५७ (गाथा) में। उसमें ऐसा आया है। पंचास्तिकाय में, हों! आहाहा! होता है जीव में; है वह जीव में उसकी पर्याय; कर्म उसका नाश, यह सब पर्याय पराभव करता है, पराभव करता है, ऐसा। स्वभाव का नाश करके गति खड़ी करता है - ऐसा निमित्त से (कहा जाता है)। इसलिए फिर वहाँ लोग कहते हैं न, देखो! कर्म के कारण होता है। वह तो दूसरी बात है। सुन न! कर्म पराभव करता है ऐसा कहे, परन्तु वह तो वहाँ स्वयं पराभव होने के योग्य है, उसे कर्म पराभव करता है - ऐसा कहने में आया है। ऐसा है। है न? ५४-५५-५६ गाथा में, पंचास्तिकाय (में)। कर्म उसे पराभव करके ऐसा करता है। वापस गति में करता है। यहाँ तो कहते हैं कर्म है, वह तो निमित्तरूप से है, नामकर्म की प्रकृति है न, वह गति आदि की, वह तो निमित्त है और आत्मा में गति की योग्यता है, वह आत्मा में है परन्तु यहाँ जीव के स्वभाव की अनुभूति के काल में उस गति की योग्यता का भाव उस अनुभूति में नहीं आता। आहाहा!

यह तो अभी सब साधारण बातें हैं। आहाहा! चारगति, यह मार्गणा जीव को नहीं

है। चारगति जीव में नहीं है, आहाहा! वह पुद्गल का परिणाम है, कहते हैं। आहाहा! भगवान ज्ञायक स्वरूप है, चैतन्यस्वरूप प्रभु का अनुभव होने पर वे गति के परिणाम इसकी अनुभूति में नहीं आते। आहाहा! समझ में आया? इसकी गति की योग्यता इसमें होने पर भी, वह जीव के स्वभाव की अनुभूति के काल में वह पर्याय इस अनुभूति में नहीं आती। अरे! ऐसी बातें हैं प्रभु! आहाहा! इससे उस गति के परिणाम को भी पुद्गलद्रव्य के परिणाम कह दिया है। आहाहा! इसे मार्गणास्थान कहते हैं।

इन्द्रिय,... इन्द्रियों की स्थिति आत्मा में नहीं है। पाँच इन्द्रियाँ हैं न? भावेन्द्रिय और द्रव्येन्द्रिय—ये दोनों; ये तो दोनों मार्गणास्थान हैं। पर्याय में शोधने की योग्यता स्वभाव में नहीं। आहाहा! इन्द्रिय-भावेन्द्रिय पर्याय तो आत्मा की पर्याय में है। द्रव्येन्द्रिय जड़ की पर्याय में है, तथापि दोनों को पुद्गल के परिणाम गिनकर... आहाहा! इस जीव में वे नहीं हैं। नहीं तो भावेन्द्रिय आ गयी है ३१ वीं गाथा में। भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और इन्द्रिय के विषय जीव में नहीं हैं; जीव इनसे भिन्न है-अधिक है, परिपूर्ण है। ३१ वीं गाथा में आया है। **जो इन्द्रिये जिणित्ता।** आहाहा! ये इन्द्रियाँ आत्मा में नहीं है। ये सब पुद्गल के परिणाम हैं। आहाहा! क्यों? कि अनीन्द्रिय ऐसा जो भगवान आत्मा, उसके अनुभव की पर्याय में ये भावेन्द्रिय और द्रव्येन्द्रिय उसमें नहीं आती। उसमें भिन्न रह जाती है। आहाहा! यह तो ४९ (गाथा) में आ गया न? भावेन्द्रिय क्षयोपशमभाव जो है, वह भी आत्मा का स्वभाव नहीं है - ऐसा ४९ में आया है। द्रव्येन्द्रिय है, उसका वह-जीव स्वामी नहीं कि जिससे द्रव्य इन्द्रिय से रस को चखे और सुने आहाहा! तथा भावेन्द्रिय है, वह उसका स्वरूप नहीं, वह क्षयोपशमभाव है, वह इसके स्वभाव की दृष्टि से देखने पर वह क्षयोपशमभाव भी इसका नहीं है। आहाहा! यह ४९ में इससे पहले आ गया है।

काय,... औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्माण और उनके सब भेद, वे आत्मा में नहीं हैं। औदारिकशरीर काय, वैक्रियिकशरीर वह है, वहाँ उसकी योग्यता तो है तब वहाँ है, सम्बन्ध में शरीर का और इसका सम्बन्ध है इतना निमित्त-निमित्त सम्बन्ध, तब निमित्त की योग्यता तो वहाँ है, शरीर है इसलिए। सम्बन्ध अपनी योग्यता का, वह भी आत्मा में नहीं है। आहाहा! क्योंकि जीव के स्वभाव की अनुभूति की पर्याय में वह नहीं आता। आहाहा! काय।

योग,... मन, वचन और काया का योग, ठीक। योग है तो पर्याय का कम्पन परन्तु वह कर्म के निमित्त के सम्बन्ध से हुआ पुद्गल का परिणाम गिनकर आत्मा में वह नहीं है। आहाहा!

वेद,... द्रव्यवेद और भाववेद दोनों जीव में नहीं है। आहाहा! पर्याय में भले भाववेद हो, द्रव्यवेद तो पर्याय में भी नहीं, वह तो जड़ में है। आहाहा! ये जो शरीर की इन्द्रियाँ, वे तो जड़ की पर्याय है, इस जड़ इन्द्रिय को तो आत्मा स्पर्श भी नहीं करता। आहाहा! अज्ञानी भी, हों! आहाहा! मात्र जो भाववेद है, विकल्प है, वह भी पुद्गल का परिणाम गिनकर, स्वभाव की अनुभूति में वह नहीं है। स्वभाव में नहीं है, वस्तु के स्वभाव में नहीं है, परन्तु 'नहीं' कब हो? कि उसका अनुभव करे, तब कि यह आत्मा ऐसा है। समझ में आया? ऐसी बातें हैं बापू! वीतरागमार्ग लोगों ने साधारण करके चलाया है। यह करो और व्रत पालो, दया करो और....

मुमुक्षु : वे कहते हैं कठिन कर दिया, वहाँ सादा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ही यह है। कठिन कहो या अच्छी कहो जो कहो वह। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है वहाँ। आहाहा! कहो, हिम्मतभाई! आहाहा! हिम्मतभाई! कठिन किया कहते हैं, लोग कहते हैं। वस्तु तो यह है। आहाहा!

वेद की वासना इसकी पर्याय में होने पर भी इसके जीव को जीव का स्वभाव और उसकी अनुभूति में वह आती नहीं; इसलिए उसे भिन्न गिनने में आया है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! वासना है तो इसकी पर्याय में और वह कर्म के-वेद के उदय के कारण नहीं। आहाहा! तथापि वह विकृत अवस्था है। आहाहा! अलिंगग्रहण में आता है न? द्रव्य और भाव वेदरहित है, अलिंगग्रहण है। आहाहा! शैली तो देखो! द्रव्यवेद और भाववेद लिंग है, उससे अलिंगग्रहण है, उससे आत्मा ग्रहण में नहीं आता। आहाहा! आहाहा! यह यहाँ ऐसा कहा। वही अमृतचन्द्राचार्य ने वहाँ अर्थ किया। ये यहाँ अमृतचन्द्राचार्य ने यहाँ यह अर्थ किया। कहते हैं न, दुरुह कर दिया। ऐसा कि यह नहीं... यह नहीं, इतना था, उसमें ऐसा सब विस्तार कर दिया। अब उनका है, उनका वापस जगमोहनलालजी ने गुणगान किया है, उस पुस्तक का अभी आयी है कल। जगमोहनलालजी ने गुणगान किया पुस्तक बहुत अच्छी बनायी है। आहाहा!

वेद,... वेद वह द्रव्य और भाववेद लिंग है, उससे आत्मा ज्ञात हो - ऐसा नहीं; इसलिए अलिंगग्रहण है। यहाँ कहते हैं कि वेद—द्रव्य और भाववेद, वह जीव के अनुभव में नहीं आता, क्योंकि जीव के स्वभाव में नहीं है। इसलिए स्वभाव के अनुभव में वह नहीं आता; इसलिए वह वेदभाव भिन्न है। वह पुद्गल का परिणाम गिनने में आया है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तक आया, वेद तक आया। स्त्री, पुरुष तथा नपुंसक का जो विकल्प उठता है, वह भाववेद है। है तो इसकी पर्याय में, इसके कारण से परन्तु वास्तविक स्वभाव में नहीं है। त्रिकाली ध्रुवस्वभाव की अपेक्षा से देखें तो उस अनुभूति में वह नहीं आता। त्रिकाली स्वभाव का सम्यग्दर्शन-ज्ञान होने पर उसमें वह चीज़ नहीं आती; इसलिए वेद को पुद्गल परिणाम गिनकर भिन्न कहा गया है। आहाहा! अब इतनी निवृत्ति कहाँ! आहाहा! अरे! ऐसा मनुष्यपने का काल मिला, प्रभु! इसमें जैनधर्म बाड़ा मिला, उसमें यह बात समझने की फुरसत न मिले तो कब समझेगा? आहाहा!

कषाय,... क्रोध, मान, माया, लोभ—ऐसे जो कषाय के भाव हैं, उन्हें यहाँ पुद्गल के परिणाम कहा है। आहाहा! पुद्गलद्रव्य के परिणाममय—ऐसा वापस अभेद (किया है)। क्योंकि उस जीव की अपनी अनुभूति, अपना भगवान आत्मा आनन्दकन्द शुद्ध चैतन्य को अनुसरण कर होती अनुभूति में यह अनुसरण नहीं आता, कषाय का भाव उसमें नहीं आता। इसलिए उसे पुद्गल का परिणाम कहकर भिन्न गिनने में आया है। आहाहा! यह टीका अमृतचन्द्राचार्य की टीका!! आहाहा!

ज्ञान,... यह मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय आदि भेद जीव के स्वभाव में नहीं है। आहाहा! भेद है, वह अभेद अनुभव होने पर उसमें यह भेद नहीं आता। क्या कहा? यह सूक्ष्म है। भगवान आत्मा अखण्ड अभेद चैतन्यस्वरूप का अनुभव करने पर, ज्ञान के पाँच भेद उसमें-अनुभूति में नहीं आते, अभेद में भेद नहीं आते; इसलिए उस भेद को (पुद्गल के परिणाम कहा है)। आहाहा! क्योंकि भेद पर लक्ष्य जाने से राग होता है और इसलिए वह भेद का भाव पुद्गल के परिणाम में डालकर... आहाहा! अब ऐसा कहाँ? अरे! नया अत्यन्त अनजाना व्यक्ति हो, उसे (लगता है कि) यह क्या कहते हैं ऐसी बातें? आहाहा! ये ज्ञान के पाँच प्रकार और उसमें अज्ञान के भी प्रकार, ये सब भेद में जाते हैं। अनुभूति

के अभेद में ये भेद नहीं आते। आहाहा! पुस्तक सामने है न? ऐसी बात है। इसे समझना पड़ेगा बापू! महँगी पड़े तो भी इसे समझना पड़ेगा, भाई! अरे! ऐसा अवसर कब मिलेगा? आहाहा! इसे जानना पड़ेगा। पहले ख्याल में-ज्ञान में निर्णय करना पड़ेगा न? अनुभूति बाद में। समझ में आया? ज्ञान में, ज्ञान के ये भेद आत्मा में नहीं है, अभेद की अनुभूति होने पर उसमें भी नहीं है। आहाहा! इसलिए इन्हें पुद्गल का परिणाम कहकर अनुभूति से भिन्न कहा है। आहाहा! गजब बात है! मार्गणास्थान कहे न? यह जीव किस स्थान में है, किस प्रकार में है? कहते हैं कि ये किस प्रकार में है और किस स्थान में है- यह वस्तु में नहीं है। आहाहा! मार्गणा है न? मार्गणा अर्थात् खोजना। यह किस पर्याय में है, किस वेद में है, किस गति में है ऐसा; तथापि ये सब स्थान जीवस्वभाव में नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

संयम,... संयम-असंयम के सब भेद लेना। संयम, संयमासंयम, असंयम इतने सब भेद हैं, ये संयमस्थान भी जीव में नहीं है। भेद है, वे नहीं, इतना सिद्ध करना है। है तो भेद इसकी पर्याय में, परन्तु यहाँ चैतन्यस्वभाव एकरूप अखण्ड... आहाहा! उसका अनुभव होने पर, उसके सन्मुख की दशा होने पर ये सब दशायें सब बाहर रह जाती है। आहाहा! समझ में आया? अनुभूति है तो प्रगट पर्याय परन्तु उस अनुभूति की पर्याय में स्वसन्मुख के झुकाववाली दशा है; इसलिए यह भेदवाली दशा अनुभूति से भिन्न है। अनुभूति है तो पर्याय... आहाहा! वह निश्चय से तो उस अनुभूति की पर्याय, द्रव्य में नहीं। यहाँ तो... आहाहा! सिद्ध की पर्याय भी द्रव्य में नहीं। पर्याय, द्रव्य में कहाँ है? पर्याय, पर्याय में है। आहाहा!

मुमुक्षु : द्रव्य का प्रतिभास तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनो, सुनो! प्रश्न करने की अपेक्षा (पहले) समझना, जरा इसमें ध्यान रखना, इसमें सब उत्तर आ जाते हैं। वरना इसमें फेरफार हो जायेगा। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है।

यह संयम के स्थान... आहाहा! ये सब भेद, किस संयम की पर्याय में यह जीव है - ऐसा खोजना, वह वस्तु के स्वरूप में नहीं है। आहाहा! जीव का स्वभाव परिपूर्ण

अभेद, अखण्ड (है)। 'अ' आता है न उसमें, 'अ' पहला आता है। अ, आ, इ, ऊ। इसमें 'क' पहले आता है। आत्मा 'अ' अर्थात् अखण्ड। आहाहा! आहाहा! 'क' और 'अ' आहाहा! ये संयम के स्थान भी पुद्गल के परिणामस्थान गिनकर, आहाहा! द्रव्य का अभेद अनुभव होने पर, उसमें भेद नहीं है; इसलिए पुद्गलस्थान कहे गये हैं।

दर्शन,... चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल - यह दर्शन लेना। समकित की बात बाद में आयेगी। समझ में आया? ये दर्शन के भेद भी... भेद को पुद्गल परिणाम गिनकर, अभेद के अनुभव में ये भेद नहीं आते; इसलिए इन्हें भिन्न गिनने में आया है। आहाहा! यह सूक्ष्म बातें! कषाय का तो ठीक, परन्तु यह तो इसके भेद भी इसमें नहीं-ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है। भगवान अखण्ड आनन्द अभेदस्वरूप का अनुभव होने पर ये दर्शन के भेद—चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल—ये भेद उसमें नहीं आते। आहाहा! आहाहा!

लेश्या,... छहलेश्या—कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म, शुक्ल—ये लेश्या तो प्रत्यक्ष मलिन है, उसे भी यहाँ पुद्गल के परिणाम गिनकर अलेशी प्रभु आत्मा के स्वभाव की अनुभूति होने पर ये लेश्या उसमें नहीं आती। आहाहा! तेजो, पद्म, और शुक्ल लेश्या भी अनुभूति में नहीं आती। उनसे अनुभूति नहीं होती। आहाहा! द्रव्य का अखण्डानन्द प्रभु स्वभाव की अनुभूति में ये लेश्या के परिणाम से अनुभूति नहीं; द्रव्य के आश्रय से अनुभूति हुई है। लेश्या के आश्रय से अनुभूति नहीं होती तथा उस अनुभूति में यह लेश्या नहीं आती। उससे होती तो नहीं परन्तु उसके अनुभव में यह नहीं आती। आहाहा! शुक्ललेश्या...

मुमुक्षु : यह तो विकारी पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विकारी दशा है, विकल्प है। आहाहा! आहाहा! लेश्या आत्मा में-अनुभव में नहीं आती। अरे! भव्य और अभव्य दो भेद भी जीव के स्वभाव में नहीं है। ठीक! पर्याय है। भव्यपना और अभव्यपना तो पर्याय है, उस द्रव्य के स्वभाव में यह भव्यपना और अभव्यपना यहाँ पुद्गल के परिणाम गिनकर निकाल दिया है। आहाहा! क्योंकि सिद्ध में अब भव्यपना नहीं रहता; अतः नहीं रहता तो, उसका स्वभाव हो तो रहना चाहिए। आहाहा! जो योग्यता है, वह पूर्ण प्रगट हो गयी है। आहाहा! आहाहा!

सोगानी में भी आता है कि आत्मा भव्य है या अभव्य? यह भव्य-अभव्य रहने दे-

छोड़ दे। सोगानी में आता है, द्रव्यदृष्टि प्रकाश (में आता है)। अपन तो आत्मा ज्ञायकस्वरूप हैं। यह भव्य-अभव्य नहीं। आहाहा!

समकित,... के प्रकार उपशम, क्षायिक और क्षयोपशम तथा मिथ्यात्व सासादन, और उसके सब भेद; ये भेद स्वरूप के अनुभव में नहीं, जीव में नहीं। जीव में नहीं अर्थात् कब उसे नहीं? कि उसका अनुभव करे, तब उसमें-जीव में नहीं - ऐसा इसे ख्याल आया। आहाहा! समकित-क्षायिक समकित की पर्याय जीव में नहीं। उस सर्वविशुद्ध में ऐसा कहते हैं कि पुण्य और पाप जीव है। यह आता है न? सूत्रज्ञान, वह जीव है, प्रव्रज्या, वह जीव है। आहाहा! इसकी पर्याय है, उसका ज्ञान कराया है। यहाँ तो इसके जीव स्वभाव में वे भेद नहीं हैं। आहाहा! आहाहा! ये समकित के भेद जीव के स्वभाव में अनुभूति करने पर भेद अनुभव में नहीं आते। आहाहा!

संज्ञा,... संज्ञी-असंज्ञी यह आत्मा में नहीं है। **आहार...** अनाहार **जिनका लक्षण है ऐसे जो मार्गणास्थान...** मार्गणा अर्थात् खोजना। किस पर्याय में है, किस गति में है, किस लेश्या में है, किस ज्ञान की पर्याय में है - ऐसा खोजना। ये सब शोधक की जो अवस्था। आहाहा! **वे सर्व ही जीव के नहीं हैं,...** ऐसे **जिनका लक्षण है ऐसे जो मार्गणास्थान...** खोजने के प्रकार **वे सर्व ही जीव के नहीं हैं,...** आहाहा! **क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से...** इस भेद पर लक्ष्य जाने से विकल्प उठता है। आहाहा! और अभेद का अनुभव करने पर भेद साथ में नहीं आता। आहाहा! ऐसी बातें! आहाहा! अभेद का अनुभव है तो पर्याय, परन्तु उस अभेद का अनुभव, उस पर्याय में ये भेदभाव नहीं आते। आहाहा! सूक्ष्म विषय है। २९ बोल का घूरा कहा है। आहाहा! २३ हुए।

२४, **भिन्न-भिन्न प्रकृतियों का अमुक मर्यादा तक कालान्तर में साथ रहना जिनका लक्षण है ऐसे जो स्थितिबन्धस्थान...** स्थिति, स्थिति, कर्म की स्थिति है न? वह स्थिति इतनी अवधि रहे। कर्म। आत्मा में भी उसका निमित्तपना है, इतनी स्थिति वहाँ रहे, ऐसी यहाँ आत्मा में भी ऐसी योग्यता की एक स्थिति है, योग्यता है। वह है वह जड़ में है और यह स्थिति के योग्य यहाँ रहा है। वहाँ निमित्तपना है, उसकी योग्यता अपने में है परन्तु उन दोनों को पुद्गल परिणाम गिन दिया है। आहाहा! निमित्त के सम्बन्ध से हुआ भाव भी

निमित्त का गिनकर पुद्गलपरिणाम गिन दिया है और आत्मा के-अभेद के स्वभाव से जो अनुभव हुआ, वे परिणाम जीव के हैं - ऐसा कहा। अनुभव... आहाहा! है तो अनुभव परिणाम, आहाहा! परन्तु ये अनुभूति के परिणाम जीव के हैं, ऐसा कहा और वे परिणाम हैं, वे पुद्गल के हैं। **ऐसे जो स्थितिबन्धस्थान वे सर्व ही जीव के नहीं हैं क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है**। आहाहा!

२५, अब **कषायों के विपाक की अतिशयता...** कर्म का कषाय है, उसका फल / विपाक विशेषपना **जिनका लक्षण है ऐसे जो संक्लेश...** विशेषपना कहना है न? संक्लेशपरिणाम / संक्लेश अशुभभाव, अशुभ के स्थान, वे सब पुद्गलद्रव्य के विपाक की अतिशयता से होते स्थान, **वे सर्व ही जीव के नहीं हैं,...** वे अशुभभाव-स्थान हैं अनेक प्रकार के (हैं), वे जीव के स्वभाव में नहीं हैं; इसलिए उसके अनुभव में भी वे नहीं हैं। आहाहा! ऐसा है। यहाँ तो ठीक, अब २६ वाँ कठोर (है)।

(२६) **कषायों के विपाक की मन्दता...** वह अतिशय था न? अतिशय अर्थात् विशेष कठोर उदय था और यहाँ अशुभभाव हुआ, ये दोनों में इकट्ठा डाल दिया। आहाहा! और अब **कषायों के विपाक की मन्दता जिनका लक्षण है ऐसे जो विशुद्धिस्थान...** ये शुभपरिणाम के प्रकार, शुभयोग के भी प्रकार, शुभयोग के परिणाम के प्रकार। आहाहा! **कषायों के विपाक की मन्दता... वे सर्व ही जीव के नहीं हैं क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है।**

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)